॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

ऐतरेयोपनिषद्

ऋग्वेदीय ऐतरेय आरण्यकमें दूसरे आरण्यकके चौथे, पाँचवें और छठे अध्यायोंको ऐतरेय-उपनिषद्के नामसे कहा गया है। इन तीन अध्यायोंमें ब्रह्मविद्याकी प्रधानता है, इस कारण इन्हींको 'उपनिषद्' माना है।

शान्तिपाठ

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः। अनेनाधीतेनाहोरात्रान्सन्दधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

ॐ=हे सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मन्!; **मे**=मेरी; **वाक्**=वाक्-इन्द्रिय; **मनसि**=मनमें; **प्रतिष्ठिता**=स्थित हो जाय; **मे**=मेरा; **मनः**=मन; **वाचि**=वाक्-इन्द्रियमें; **प्रतिष्ठितम्**=स्थित हो जाय; **आविः**=हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर!; **मे**=मेरे लिये; **आवीः एधि**=(तू) प्रकट हो; **मे**=(हे मन और वाणी! तुम दोनों) मेरे लिये; **वेदस्य**=वेदविषयक ज्ञानको; **आणीस्थः**=लानेवाले बनो; **मे**=मेरा; **श्रुतम्**=सुना हुआ ज्ञान; **मा प्रहासीः**=(मुझे) न छोड़े; **अनेन अधीतेन**=इस अध्ययनके द्वारा; **अहोरात्रान्**=(मैं) दिन और रात्रियोंको; **सन्दधामि**=एक कर दूँ; **ऋतम्**=(मैं) श्रेष्ठ शब्दोंको ही; **वदिष्यामि**=बोलूँगा; **सत्यम्**=सत्य ही; **वदिष्यामि**=बोला करूँगा; **तत्**=वह (ब्रह्म); **माम् अवतु**=मेरी रक्षा करे; **तत्**=वह (ब्रह्म); **वक्तारम् अवतु**=आचार्यकी रक्षा करे; **अवतु माम्**=रक्षा करे मेरी (और); **अवतु वक्तारम्**=रक्षा करे (मेरे) आचार्यकी; **अवतु वक्तारम्**=रक्षा करे (मेरे) आचार्यकी; **ओम् शान्तिः**=भगवान् शान्तिस्वरूप हैं; **शान्तिः**=शान्तिस्वरूप हैं; **शान्तिः**=शान्तिस्वरूप हैं।

व्याख्या—इस शान्तिपाठमें सब प्रकारके विघ्नोंकी शान्तिके लिये परमात्मासे प्रार्थना की गयी है। प्रार्थनाका भाव यह है कि 'हे सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मन्! मेरी वाणी मनमें स्थित हो जाय और मन वाणीमें स्थित हो जाय, अर्थात् मेरे मन-वाणी दोनों एक हो जायँ! ऐसा न हो कि मैं वाणीसे एक पाठ पढ़ता रहूँ और मन दूसरा ही चिन्तन करता रहे या मनमें दूसरा ही भाव रहे और वाणीद्वारा दूसरा प्रकट करूँ। मेरे संकल्प और वचन दोनों विशुद्ध होकर एक हो जायँ। हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! आप मेरे लिये प्रकट हो जाइये—अपनी योगमायाका पर्दा मेरे सामनेसे हटा लीजिये। (इस प्रकार परमात्मासे प्रार्थना करके अब उपासक अपने मन और वाणीसे कहता है कि) हे मन और वाणी! तुम दोनों मेरे लिये वेदविषयक ज्ञानकी प्राप्ति करानेवाले बनो—तुम्हारी सहायतासे मैं वेदविषयक ज्ञान प्राप्त कर सकूँ। मेरा गुरुमुखसे सुना हुआ और अनुभवमें आया हुआ ज्ञान मेरा त्याग न करे अर्थात् वह सर्वदा मुझे स्मरण रहे—मैं उसे कभी न भूलूँ। मेरी इच्छा है कि अपने अध्ययनद्वारा मैं दिन और रात एक कर दूँ अर्थात् रात-दिन निरन्तर ब्रह्मविद्याका पठन और चिन्तन ही करता रहूँ। मेरे समयका एक क्षण भी व्यर्थ न बीते। मैं अपनी वाणीसे सदा ऐसे ही शब्दोंका उच्चारण करूँगा, जो सर्वथा उत्तम हों, जिनमें किसी प्रकारका दोष न हो तथा जो कुछ बोलूँगा, सर्वथा सत्य बोलूँगा—जैसा देखा, सुना और समझा हुआ भाव है, ठीक वही भाव वाणीद्वारा प्रकट करूँगा। उसमें किसी प्रकारका छल नहीं करूँगा। (इस प्रकार अपने मन और वाणीको दृढ़ बनाकर अब पुनः परमात्मासे प्रार्थना करता है—) वे परब्रह्म परमात्मा मेरी रक्षा करें। वे परमेश्वर मुझे ब्रह्मविद्या सिखानेवाले आचार्यकी रक्षा करें। वे रक्षा करें

मेरी और मेरे आचार्यकी, जिससे मेरे अध्ययनमें किसी प्रकारका विघ्न उपस्थित न हो। आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक—तीनों प्रकारके विघ्नोंकी सर्वथा निवृत्तिके लिये तीन बार '**शान्तिः**' पदका उच्चारण किया गया है। भगवान् शान्तिस्वरूप हैं, इसलिये उनके स्मरणसे शान्ति निश्चित है।'

प्रथम अध्याय

प्रथम खण्ड

ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत्किंचन मिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति॥ १॥

ॐ=ॐ; **इदम्**=यह जगत्; **अग्रे**=(प्रकट होनेसे) पहले; **एकः**=एकमात्र; **आत्मा**=परमात्मा; **वै**=ही; **आसीत्**=था; **अन्यत्**=(उसके सिवा) दूसरा; **किंचन**=कोई **एव**=भी; **मिषत्**=चेष्टा करनेवाला; **न**=नहीं था; **सः**=उस (परम पुरुष परमात्मा) ने; **नु**=(मैं) निश्चय ही; **लोकान् सृजै**=लोकोंकी रचना करूँ; **इति**=इस प्रकार; **ईक्षत**=विचार किया॥ १॥

व्याख्या—इस मन्त्रमें परमात्माके सृष्टि-रचना-विषयक प्रथम संकल्पका वर्णन है। भाव यह है कि देखने, सुनने और समझनेमें आनेवाले जड-चेतनमय प्रत्यक्ष जगत्के इस रूपमें प्रकट होनेसे पहले कारण-अवस्थामें एकमात्र परमात्मा ही थे। उस समय इसमें भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंकी अभिव्यक्ति नहीं थी। उस समय उन परब्रह्म परमात्माके सिवा दूसरा कोई भी चेष्टा करनेवाला नहीं था। सृष्टिके आदिमें उन परम पुरुष परमात्माने यह विचार किया कि 'मैं प्राणियोंके कर्म-फल-भोगार्थ भिन्न-भिन्न लोकोंकी रचना करूँ'॥ १॥

स इमाँल्लोकानसृजत। अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठान्तरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः॥ २॥

सः=उसने; **अम्भः**=अम्भ (द्युलोक तथा उसके ऊपरके लोक); **मरीचीः**=मरीचि (अन्तरिक्ष); **मरम्**=मर (मर्त्यलोक) और; **आपः**=जल (पृथ्वीके नीचेके लोक); **इमान्**=इन सब; **लोकान् असृजत**=लोकोंकी रचना की; **दिवम् परेण**=द्युलोक—स्वर्गलोकसे ऊपरके लोक; **प्रतिष्ठा**=(तथा) उनका आधारभूत; **द्यौः**=द्युलोक भी; **अदः**=वे सब; **अम्भः**='अम्भ' के नामसे कहे गये हैं; **अन्तरिक्षम्**=अन्तरिक्ष लोक; (भुवर्लोक) ही; **मरीचयः**=मरीचि है (तथा); **पृथिवी**=यह पृथ्वी ही; **मरः**=मर—मृत्युलोकके नामसे कही गयी है (और); **याः**=जो; **अधस्तात्**=(पृथ्वीके) नीचे—भीतरी भागमें (स्थूल पातालादि लोक)हैं; **ताः**=वे; **आपः**=जलके नामसे कहे गये हैं॥ २॥

व्याख्या—यह विचार करके परब्रह्म परमेश्वरने अम्भ, मरीचि, मर और जल—इन लोकोंकी रचना की। इन शब्दोंको स्पष्ट करनेके लिये आगे श्रुतिमें ही कहा गया है कि स्वर्गलोकसे ऊपर जो महः, जनः, तपः और सत्य लोक हैं, वे और उनका आधार द्युलोक—इन पाँचों-लोकोंको यहाँ '**अम्भः**' नामसे कहा गया है। उसके नीचे जो अन्तरिक्षलोक (भुवर्लोक) है, जिसमें सूर्य, चन्द्र और तारागण—ये सब किरणोंवाले लोकविशेष हैं, उसका वर्णन यहाँ मरीचि नामसे किया गया है। उसके नीचे जो यह पृथ्वीलोक है—जिसको मृत्युलोक भी कहते हैं, वह यहाँ 'मर' के नामसे कहा गया है और उसके नीचे अर्थात् पृथ्वीके भीतर जो पातालादि लोक हैं, वे '**आपः**' के नामसे कहे गये हैं। तात्पर्य यह कि जगत्में जितने भी लोक त्रिलोकी, चतुर्दश भुवन एवं सप्त लोकोंके नामसे प्रसिद्ध हैं, उन सब लोकोंकी परमात्माने रचना की॥ २॥

स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नु सृजा इति सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्छयत्॥ ३॥

सः=उसने; **ईक्षत**=फिर विचार किया; **इमे**=ये; **नु**=तो हुए; **लोकाः**=लोक; (अब) **लोकपालान् नु सृजै**=लोकपालोंकी भी रचना मुझे अवश्य करनी चाहिये; **इति**=यह विचार करके; **सः**=उसने; **अद्भ्यः**=जलसे; **एव**=ही; **पुरुषम्**=हिरण्यगर्भरूप पुरुषको; **समुद्धृत्य**=निकालकर; **अमूर्छयत्**=उसे मूर्तिमान् बनाया॥ ३॥

व्याख्या—इस प्रकार इन समस्त लोकोंकी रचना करनेके अनन्तर परमेश्वरने फिर विचार किया कि 'ये सब लोक तो रचे गये। अब इन लोकोंकी रक्षा करनेवाले लोकपालोंकी रचना भी मुझे अवश्य करनी

चाहिये, अन्यथा बिना रक्षकके ये सब लोक सुरक्षित नहीं रह सकेंगे।' यह सोचकर उन्होंने जलमेंसे अर्थात् जल आदि सूक्ष्म महाभूतोंमेंसे हिरण्यमय पुरुषको निकालकर उसको समस्त अङ्ग-उपाङ्गोंसे युक्त करके मूर्तिमान् बनाया। यहाँ 'पुरुष' शब्दसे सृष्टिकालमें सबसे पहले प्रकट किये जानेवाले ब्रह्माका वर्णन किया गया है; क्योंकि ब्रह्मासे ही सब लोकपालोंकी और प्रजाको बढ़ानेवाले प्रजापतियोंकी उत्पत्ति हुई है—यह विस्तृत वर्णन शास्त्रोंमें पाया जाता है और ब्रह्माकी उत्पत्ति जलके भीतरसे—कमलनालसे हुई, ऐसा भी वर्णन आता है। अतः यहाँ 'पुरुष' शब्दका अर्थ ब्रह्मा मान लेना उचित जान पड़ता है॥ ३॥

तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाण्डं मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतामक्षिभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्राद्दिशस्त्वङ् निरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः शिश्नं निरभिद्यत शिश्नाद्रेतो रेतस आपः॥ ४॥

(परमात्माने) **तम्**=उस (हिरण्यगर्भरूप पुरुष)-को लक्ष्य करके; **अभ्यतपत्**=संकल्परूप तप किया; **अभितप्तस्य**=उस तपसे तपे हुए; **तस्य**=हिरण्यगर्भके शरीरसे; **यथाण्डम्**=(पहले) अण्डेकी तरह (फूटकर); **मुखम्**=मुख-छिद्र; **निरभिद्यत**=प्रकट हुआ; **मुखात्**=मुखसे; **वाक्**=वाक्-इन्द्रिय (और); **वाचः**=वाक्-इन्द्रियसे; **अग्निः**=अग्निदेवता प्रकट हुआ (फिर); **नासिके**=नासिकाके दोनों छिद्र; **निरभिद्येताम्**=प्रकट हुए; **नासिकाभ्याम्**=नासिका-छिद्रोंमेंसे; **प्राणः**=प्राण उत्पन्न हुआ (और); **प्राणात्**=प्राणसे; **वायुः**=वायुदेवता उत्पन्न हुआ (फिर); **अक्षिणी**=दोनों आँखोंके छिद्र; **निरभिद्येताम्**=प्रकट हुए; **अक्षिभ्याम्**=आँखोंके छिद्रोंमेंसे; **चक्षुः**=नेत्र-इन्द्रिय प्रकट हुई (और); **चक्षुषः**=नेत्र-इन्द्रियसे; **आदित्यः**=सूर्य प्रकट हुआ; (फिर) **कर्णौ**=दोनों कानोंके छिद्र; **निरभिद्येताम्**=प्रकट हुए; **कर्णाभ्याम्**=कानोंसे; **श्रोत्रम्**=श्रोत्र-इन्द्रिय प्रकट हुई (और); **श्रोत्रात्**=श्रोत्र-इन्द्रियसे; **दिशः**=दिशाएँ प्रकट हुईं (फिर); **त्वक्**=त्वचा; **निरभिद्यत**=प्रकट हुई; **त्वचः**=त्वचासे; **लोमानि**=रोम उत्पन्न हुए (और); **लोमभ्यः**=रोमोंसे; **ओषधिवनस्पतयः**=ओषधि और वनस्पतियाँ प्रकट हुईं (फिर); **हृदयम्**=हृदय; **निरभिद्यत**=प्रकट हुआ; **हृदयात्**=हृदयसे; **मनः**=मनका आविर्भाव हुआ (और); **मनसः**=मनसे; **चन्द्रमाः**=चन्द्रमा उत्पन्न हुआ (फिर); **नाभिः**=नाभि; **निरभिद्यत**=प्रकट हुई; **नाभ्याः**=नाभिसे; **अपानः**=अपानवायु प्रकट हुआ (और); **अपानात्**=अपानवायुसे; **मृत्युः**=मृत्युदेवता उत्पन्न हुआ (फिर); **शिश्नम्**=लिङ्ग; **निरभिद्यत**=प्रकट हुआ; **शिश्नात्**=लिङ्गसे; **रेतः**=वीर्य (और); **रेतसः**=वीर्यसे; **आपः**=जल उत्पन्न हुआ॥ ४॥

व्याख्या—इस प्रकार हिरण्यगर्भ पुरुषको उत्पन्न करके उसके अङ्ग-उपाङ्गोंको व्यक्त करनेके उद्देश्यसे जब परमात्माने संकल्परूप तप किया, तब उस तपके फलस्वरूप हिरण्यगर्भ पुरुषके शरीरमें सर्वप्रथम अण्डेकी भाँति फटकर मुख-छिद्र निकला। मुखसे वाक्-इन्द्रिय उत्पन्न हुई और वाक्-इन्द्रियसे उसका अधिष्ठातृ-देवता अग्नि उत्पन्न हुआ। फिर नासिकाके दोनों छिद्र हुए, उनमेंसे प्राणवायु प्रकट हुआ और प्राणोंसे वायुदेवता उत्पन्न हुआ। यहाँ घ्राणेन्द्रियका अलग वर्णन नहीं है; अतः घ्राण-इन्द्रिय और उसके देवता अश्विनीकुमार भी नासिकासे ही उत्पन्न हुए—यों समझ लेना चाहिये। इसी प्रकार रसना-इन्द्रिय और उसके देवताका भी अलग वर्णन नहीं है; अतः मुखसे वाक्-इन्द्रियके साथ-साथ रसना-इन्द्रिय और उसके देवताकी भी उत्पत्ति हुई—यह समझ लेना चाहिये। फिर आँखोंके दोनों छिद्र प्रकट हुए, उनमेंसे नेत्र-इन्द्रिय और नेत्र-इन्द्रियसे उसका देवता सूर्य उत्पन्न हुआ। फिर कानोंके दोनों छिद्र निकले, उनमेंसे श्रोत्र-इन्द्रिय प्रकट हुई और श्रोत्र-इन्द्रियसे उसके देवता दिशाएँ उत्पन्न हुईं; उसके बाद त्वचा (चर्म) प्रकट हुई, त्वचासे रोम उत्पन्न हुए और रोमोंसे ओषधियाँ एवं वनस्पतियाँ उत्पन्न हुईं। फिर हृदय प्रकट हुआ, हृदयसे मन और मनसे उसका अधिष्ठाता चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। फिर नाभि प्रकट हुई, नाभिसे अपानवायु और अपानवायुसे गुदा-इन्द्रियका अधिष्ठाता मृत्युदेवता उत्पन्न हुआ। नाभिकी

उत्पत्तिके साथ ही गुदा-छिद्र और गुदा-इन्द्रियकी उत्पत्ति भी समझ लेनी चाहिये। यहाँ अपानवायु मल-त्यागमें हेतु होनेके कारण और उसका स्थान नाभि होनेके कारण मुख्यतासे उसीका नाम लिया गया है, परंतु मुत्यु अपानका अधिष्ठाता नहीं है, वह गुदा-इन्द्रियका अधिष्ठाता है। अतः उपलक्षणसे गुदा-इन्द्रियका वर्णन भी इसके अन्तर्गत मान लेना उचित प्रतीत होता है। फिर लिङ्ग प्रकट हुआ, उसमेंसे वीर्य और उससे जल उत्पन्न हुआ। यहाँ लिङ्गसे उपस्थेन्द्रिय और उसका देवता प्रजापति उत्पन्न हुआ—यह बात भी समझ लेनी चाहिये॥ ४॥

॥ प्रथम खण्ड समाप्त॥ १॥

द्वितीय खण्ड

ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन् महत्यर्णवे प्रापतंस्तमशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत् ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति॥ १॥

ताः=वे; **एताः सृष्टाः**=परमात्माद्वारा रचे हुए ये सब; **देवताः**=अग्नि आदि देवता; **अस्मिन्**=इस (संसाररूप); **महति**=महान्; **अर्णवे**=समुद्रमें; **प्रापतन्**=आ पड़े; (तब परमात्माने) **तम्**=उस (समस्त देवताओंके समुदाय)-को; **अशनायापिपासाभ्याम्**=भूख और प्याससे; **अन्ववार्जत्**=युक्त कर दिया; (तब) **ताः**=वे सब अग्नि आदि देवता; **एनम् अब्रुवन्**=इस परमात्मासे बोले; (भगवन्!) **नः**=हमारे लिये; **आयतनम् प्रजानीहि**=एक ऐसे स्थानकी व्यवस्था कीजिये; **यस्मिन्**=जिसमें; **प्रतिष्ठिताः**=स्थित रहकर; [**वयम्**=हमलोग;] **अन्नम्**=अन्न; **अदाम इति**=भक्षण करें॥ १॥

व्याख्या—परमात्माद्वारा रचे गये वे इन्द्रियोंके अधिष्ठाता अग्नि आदि सब देवता संसाररूपी इस महान् समुद्रमें आ पड़े अर्थात् हिरण्यगर्भ पुरुषके शरीरसे उत्पन्न होनेके बाद उनको कोई निर्दिष्ट स्थान नहीं मिला, जिससे वे उस समष्टि-शरीरमें ही रहे। तब परमात्माने उस देवताओंके समुदायको भूख और पिपासासे संयुक्त कर दिया। अतः भूख और प्याससे पीड़ित होकर वे अग्नि आदि सब देवता अपनी सृष्टि करनेवाले परमात्मासे बोले—'भगवन्! हमारे लिये एक ऐसे स्थानकी व्यवस्था कीजिये, जिसमें रहकर हमलोग अन्न भक्षण कर सकें—अपना-अपना आहार ग्रहण कर सकें'॥ १॥

ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति॥ २॥

ताभ्यः=(परमात्मा) उन देवताओंके लिये; **गाम्**=गौका शरीर; **आनयत्**=लाये; (उसे देखकर) **ताः**=उन्होंने; **अब्रुवन्**=कहा; **नः**=हमारे लिये; **अयम्**=यह; **अलम्**=पर्याप्त; **न वै**=नहीं है; **इति**=इस प्रकार उनके कहनेपर (परमात्मा); **ताभ्यः**=उनके लिये; **अश्वम्**=घोड़ेका शरीर; **आनयत्**=लाये; (उसे देखकर भी) **ताः**=उन्होंने (फिर वैसे ही); **अब्रुवन्**=कहा कि; **अयम्**=यह भी; **नः**=हमारे लिये; **अलम्**=पर्याप्त; **न वै इति**=नहीं है॥ २॥

व्याख्या—इस प्रकार उनके प्रार्थना करनेपर सृष्टिकर्ता परमेश्वरने उन सबके रहनेके लिये एक गौका शरीर बनाकर उनको दिखाया। उसे देखकर उन्होंने कहा—'भगवन्! यह हमारे लिये पर्याप्त नहीं है, अर्थात् इस शरीरसे हमारा कार्य अच्छी तरह नहीं चलनेका। इससे श्रेष्ठ किसी दूसरे शरीरकी रचना कीजिये।' तब परमात्माने उनके लिये घोड़ेका शरीर रचकर उनको दिखाया। उसे देखकर वे फिर बोले—'भगवन्! यह भी हमारे लिये यथेष्ट नहीं है, इससे भी हमारा काम नहीं चल सकता। आप कोई तीसरा ही शरीर बनाकर हमें दीजिये'॥ २॥

ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन् सुकृतं बतेति। पुरुषो वाव सुकृतम्। ता अब्रवीद्यथायतनं प्रविशतेति॥ ३॥

ताभ्यः=(तब परमात्मा) उनके लिये; **पुरुषम्**=मनुष्यका शरीर; **आनयत्**=लाये; (उसे देखकर) **ताः**=वे (अग्नि आदि सब देवता); **अब्रुवन्**=बोले; **बत**=बस; **सुकृतम् इति**=यह बहुत सुन्दर बन गया; **वाव**=सचमुच ही; **पुरुषः**=मनुष्य-शरीर; **सुकृतम्**=(परमात्माकी) सुन्दर रचना है; **ताः अब्रवीत्**=(फिर)

उन सब देवताओंसे (परमात्माने) कहा; (तुमलोग) **यथायतनम्**=अपने-अपने योग्य आश्रयोंमें; **प्रविशत इति**=प्रविष्ट हो जाओ॥ ३॥

व्याख्या—इस प्रकार जब उन्होंने गाय और घोड़ेके शरीरोंको अपने लिये यथेष्ट नहीं समझा, तब परमात्माने उनके लिये पुरुषकी अर्थात् मनुष्य-शरीरकी रचना की और वह उनको दिखाया। उसे देखते ही सब देवता बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'यह हमारे लिये बहुत सुन्दर निवास-स्थान बन गया। इसमें हम आरामसे रह सकेंगे और हमारी सब आवश्यकताएँ भलीभाँति पूर्ण हो सकेंगी।' सचमुच मनुष्य-शरीर परमात्माकी सुन्दर और श्रेष्ठ रचना है; इसीलिये यह देवदुर्लभ माना गया है और शास्त्रोंमें जगह-जगह इसकी महिमा गायी गयी है; क्योंकि इसी शरीरमें जीव परमात्माके आज्ञानुसार यथायोग्य साधन करके उन्हें प्राप्त कर सकता है। जब सब देवताओंने उस शरीरको पसंद किया, तब उनसे परमेश्वरने कहा—तुमलोग अपने-अपने योग्य स्थान देखकर इस शरीरमें प्रवेश कर जाओ॥ ३॥

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्॥ ४॥

अग्निः=(तब) अग्निदेवता; **वाक्**=वाक्-इन्द्रिय; **भूत्वा**=बनकर; **मुखम् प्राविशत्**=मुखमें प्रविष्ट हो गया; **वायुः**=वायुदेवता; **प्राणः**=प्राण; **भूत्वा**=बनकर; **नासिके प्राविशत्**=नासिकाके छिद्रोंमें प्रविष्ट हो गया; **आदित्यः**=सूर्यदेवता; **चक्षुः**=नेत्र-इन्द्रिय; **भूत्वा**=बनकर; **अक्षिणी प्राविशत्**=आँखोंके गोलकोंमें प्रविष्ट हो गया; **दिशः**=दिशाओंके अभिमानी देवता; **श्रोत्रम्**=श्रोत्र-इन्द्रिय; **भूत्वा**=बनकर; **कर्णौ प्राविशन्**=कानोंमें प्रविष्ट हो गये; **ओषधिवनस्पतयः**=ओषधि और वनस्पतियोंके अभिमानी देवता; **लोमानि**=रोएँ; **भूत्वा**=बनकर; **त्वचम् प्राविशन्**=त्वचामें प्रविष्ट हो गये; **चन्द्रमाः**=चन्द्रमा; **मनः**=मन; **भूत्वा**=बनकर; **हृदयं प्राविशत्**=हृदयमें प्रविष्ट हो गया; **मृत्युः**=मृत्युदेवता; **अपानः**=अपानवायु; **भूत्वा**=बनकर; **नाभिम् प्राविशत्**=नाभिमें प्रविष्ट हो गया; **आपः**=जलका अभिमानी देवता; **रेतः**=वीर्य; **भूत्वा**=बनकर; **शिश्नम् प्राविशन्**=लिङ्गमें प्रविष्ट हो गया॥ ४॥

व्याख्या—सृष्टिकर्ता परमेश्वरकी आज्ञा पाकर अग्निदेवताने वाक्-इन्द्रियका रूप धारण किया और पुरुषके (मनुष्य-शरीरके) मुखमें प्रविष्ट हो गये। उन्होंने जिह्वाको अपना आश्रय बना लिया। यहाँ वरुणदेवता भी रसना-इन्द्रिय बनकर मुखमें प्रविष्ट हो गये, यह बात अधिक समझ लेनी चाहिये। फिर वायुदेवता प्राण होकर नासिकाके छिद्रोंमें (उसी मार्गसे समस्त शरीरमें) प्रविष्ट हो गये। अश्विनीकुमार भी घ्राण-इन्द्रियका रूप धारण करके नासिकामें प्रविष्ट हो गये—यह बात भी यहाँ उपलक्षणसे समझी जा सकती है; क्योंकि उसका पृथक् वर्णन नहीं है। उसके बाद सूर्यदेवता नेत्र-इन्द्रिय बनकर आँखोंमें प्रविष्ट हो गये। दिशाभिमानी देवता श्रोत्रेन्द्रिय बनकर दोनों कानोंमें प्रविष्ट हो गये। ओषधि और वनस्पतियोंके अभिमानी देवता रोम बनकर चमड़ेमें प्रविष्ट हो गये तथा चन्द्रमा मनका रूप धारण करके हृदयमें प्रविष्ट हो गये। मृत्युदेवता अपान (और पायु-इन्द्रिय)-का रूप धारण करके नाभिमें प्रविष्ट हो गये। जलके अधिष्ठातृ-देवता वीर्य बनकर लिङ्गमें प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार सब-के-सब देवता इन्द्रियोंके रूपमें अपने-अपने उपयुक्त स्थानोंमें प्रविष्ट होकर स्थित हो गये॥ ४॥

तमशनायापिपासे अब्रूतामावाभ्यामभिप्रजानीहीति। ते अब्रवीदेतास्वेव वां देवतास्वाभजाम्येतासु भागिन्यौ करोमीति। तस्माद्यस्यै कस्यै च देवतायै हविर्गृह्यते भागिन्यावेवास्यामशनायापिपासे भवतः॥ ५॥

तम्=उस परमात्मासे; **अशनायापिपासे**=भूख और प्यास—ये दोनों; **अब्रूताम्**=बोलीं; **आवाभ्याम्**=हमारे लिये भी; **अभिप्रजानीहि**=(स्थानकी) व्यवस्था कीजिये; **इति**=यह (सुनकर); **ते**=उनसे; **अब्रवीत्**=(परमात्माने) कहा; **वाम्**=तुम दोनोंको (मैं); **एतासु**=इन सब; **देवतासु**=देवताओंमें; **एव**=ही; **आभजामि**=भाग दिये देता हूँ; **एतासु**=इन (देवताओं)-में ही (तुम्हें); **भागिन्यौ**=भागीदार; **करोमि इति**=बनाता हूँ; **तस्मात्**=इसलिये; **यस्यै**

कस्यै च=जिस किसी भी; **देवतायै**=देवताके लिये; **हविः**=हवि (भिन्न-भिन्न विषय); **गृह्यते**=(इन्द्रियोंद्वारा) ग्रहण की जाती है; **अस्याम्**=उस देवता (के भोजन)-में; **अशनायापिपासे**=भूख और प्यास—दोनों; **एव**=ही; **भागिन्यौ**=भागीदार; **भवतः**=होती हैं॥ ५॥

व्याख्या—तब भूख और प्यास—ये दोनों परमेश्वरसे कहने लगीं—'भगवन्! इन सबके लिये तो आपने रहनेके स्थान निश्चित कर दिये, अब हमारे लिये भी किसी स्थान-विशेषकी व्यवस्था करके उसमें हमें स्थापित कीजिये।' उनके यों कहनेपर उनसे सृष्टिके रचयिता परमेश्वरने कहा—'तुम दोनोंके लिये पृथक् स्थानकी आवश्यकता नहीं है। तुम दोनोंको मैं इन देवताओंके ही स्थानोंमें भाग दिये देता हूँ। इन देवताओंके आहारमें मैं तुम दोनोंको भागीदार बना देता हूँ।' सृष्टिके आदिमें ही परमेश्वरने ऐसा नियम बना दिया था; इसीलिये जब जिस किसी भी देवताको देनेके लिये इन्द्रियोंद्वारा विषय-भोग ग्रहण किये जाते हैं, उस देवताके भागमें ये क्षुधा और पिपासा भी हिस्सेदार होती ही हैं अर्थात् उस इन्द्रियके अभिमानी देवताकी तृप्तिके साथ क्षुधा-पिपासाको भी शान्ति मिलती है॥ ५॥

॥ द्वितीय खण्ड समाप्त॥ २॥

तृतीय खण्ड

स ईक्षतेमे नु लोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यः सृजा इति॥ १॥

सः=उस (परमात्मा)-ने; **ईक्षत**=फिर विचार किया; **नु**=निश्चय ही; **इमे**=ये सब; **लोकाः**=लोक; **च**=और; **लोकपालाः**=लोकपाल; **च**=भी; (रचे गये, अब) **एभ्यः**=इनके लिये; **अन्नम् सृजै इति**=मुझे अन्नकी सृष्टि करनी चाहिये॥ १॥

व्याख्या—इन सबकी रचना हो जानेपर परमेश्वरने फिर विचार किया—'ये सब लोक और लोकपाल तो रचे गये—इनकी रचनाका कार्य तो पूरा हो गया। अब इनके निर्वाहके लिये अन्न भी होना चाहिये—भोग्य पदार्थोंकी भी व्यवस्था होनी चाहिये; क्योंकि इनके साथ भूख-प्यास भी लगा दी गयी है। अतः उसकी (अन्नकी) भी रचना करूँ'॥ १॥

सोऽपोऽभ्यतपत्ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्तिरजायत। या वै सा मूर्तिरजायतान्नं वै तत्॥ २॥

सः=उस (परमात्मा)-ने; **अपः**=जलोंको (पाँचों सूक्ष्म महाभूतोंको); **अभ्यतपत्**=तपाया (संकल्पद्वारा उनमें क्रिया उत्पन्न की); **ताभ्यः अभितप्ताभ्यः**=उन तपे हुए सूक्ष्म पाँच भूतोंसे; **मूर्तिः**=मूर्ति; **अजायत**=उत्पन्न हुई; **वै**=निश्चय ही; **या**=जो; **सा**=वह; **मूर्तिः**=मूर्ति; **अजायत**=उत्पन्न हुई; **तत् वै**=वही; **अन्नम्**=अन्न है॥ २॥

व्याख्या—उपर्युक्त प्रकारसे विचार करके परमेश्वरने जलोंको अर्थात् पाँचों सूक्ष्म महाभूतोंको तपाया—अपने संकल्पद्वारा उनमें क्रिया उत्पन्न की। परमात्माके संकल्पद्वारा संचालित हुए उन सूक्ष्म महाभूतोंसे मूर्ति प्रकट हुई अर्थात् उनका स्थूल रूप उत्पन्न हुआ। वह जो मूर्ति अर्थात् उन पाँच महाभूतोंका स्थूलरूप उत्पन्न हुआ, वही अन्न—देवताओंके लिये भोग्य है॥ २॥

तदेनत्सृष्टं पराङ्त्यजिघांसत्तद्वाचाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोद्वाचा ग्रहीतुम्। यद्धैनद्वाचाग्रहैष्यदभिव्याहृत्य हैवान्नमत्रप्स्यत्॥ ३॥

सृष्टम्=उत्पन्न किया हुआ; **तत्**=वह; **एनत्**=यह अन्न; **पराङ्**=(भोक्ता पुरुषसे) विमुख होकर; **अत्यजिघांसत्**=भागनेकी चेष्टा करने लगा; **तत्**=(तब उस पुरुषने) उसको; **वाचा**=वाणीद्वारा; **अजिघृक्षत्**=ग्रहण करनेकी इच्छा की; (परंतु वह) **तत्**=उसको; **वाचा**=वाणीद्वारा; **ग्रहीतुम् न अशक्नोत्**=ग्रहण नहीं कर सका; **यत्**=यदि; [**सः**]=वह; **एनत्**=इस अन्नको; **वाचा**=वाणीद्वारा; **ह**=ही; **अग्रहैष्यत्**=ग्रहण कर सकता; (तो अब भी मनुष्य) **ह**=अवश्य ही; **अन्नम् अभिव्याहृत्य**=अन्नका वर्णन करके; **एव**=ही; **अत्रप्स्यत्**=तृप्त हो जाता॥ ३॥

व्याख्या—लोकों और लोकपालोंकी आहारसम्बन्धी आवश्यकताको पूर्ण करनेके लिये उत्पन्न किया हुआ वह अन्न यों समझकर कि यह मुझे खानेवाला तो मेरा विनाशक ही है, उससे छुटकारा पानेके लिये मुख फेरकर भागने लगा। तब उस मनुष्यके रूपमें उत्पन्न हुए जीवात्माने उस अन्नको वाणीद्वारा पकड़ना चाहा; परंतु वह उसे वाणीद्वारा पकड़ नहीं सका। यदि उस पुरुषने वाणीद्वारा अन्नको ग्रहण कर लिया होता तो अब भी मनुष्य अन्नका वाणीद्वारा उच्चारण करके ही तृप्त हो जाते—अन्नका नाम लेनेमात्रसे उनका पेट भर जाता; परंतु ऐसा नहीं होता॥ ३॥

तत्प्राणेनाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोत्प्राणेन ग्रहीतुं स यद्धैनत्प्राणेनाग्रहैष्यदभिप्राण्य हैवान्नमत्रप्स्यत्॥ ४॥

(तब उस पुरुषने) **तत्**=उस अन्नको; **प्राणेन**=घ्राण-इन्द्रियके द्वारा*; **अजिघृक्षत्**=पकड़ना चाहा; (परंतु वह) **तत्**=उसको; **प्राणेन**=घ्राणेन्द्रियद्वारा भी; **ग्रहीतुम् न अशक्नोत्**=नहीं पकड़ सका; **यत्**=यदि; **सः**=वह; **एनत्**=इस अन्नको; **प्राणेन**=घ्राण-इन्द्रियद्वारा; **ह**=ही; **अग्रहैष्यत्**=पकड़ सकता; (तो अब भी मनुष्य); **ह**=अवश्य; **अन्नम्**=अन्नको; **अभिप्राण्य**=सूँघकर; **एव**=ही; **अत्रप्स्यत्**=तृप्त हो जाता॥ ४॥

व्याख्या—तब उस पुरुषने अन्नको प्राणके द्वारा अर्थात् घ्राण-इन्द्रियके द्वारा पकड़ना चाहा, परंतु वह उसको घ्राण-इन्द्रियके द्वारा भी नहीं पकड़ सका। यदि वह इस अन्नको घ्राण-इन्द्रियद्वारा पकड़ सकता तो अब भी लोग अन्नको नाकसे सूँघकर ही तृप्त हो जाते; परंतु ऐसा नहीं देखा जाता॥ ४॥

तच्चक्षुषाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्चक्षुषा ग्रहीतुं स यद्धैनच्चक्षुषाग्रहैष्यद् दृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत्॥ ५॥

(तब उस पुरुषने) **तत्**=उस अन्नको; **चक्षुषा**=आँखोंसे; **अजिघृक्षत्**=पकड़ना चाहा; (परंतु वह) **तत्**=उसको; **चक्षुषा**=आँखोंके द्वारा; **ग्रहीतुम् न अशक्नोत्**=नहीं पकड़ सका; **यत्**=यदि; **सः**=वह; **एनत्**=इस अन्नको; **चक्षुषा**=आँखोंसे; **ह**=ही; **अग्रहैष्यत्**=पकड़ लेता तो; **ह**=अवश्य ही; (अब भी मनुष्य); **अन्नम्**=अन्नको; **दृष्ट्वा**=देखकर; **एव**=ही; **अत्रप्स्यत्**=तृप्त हो जाता॥ ५॥

व्याख्या—फिर उस पुरुषने अन्नको आँखोंसे पकड़ना चाहा; परंतु वह उसको आँखोंके द्वारा भी नहीं पकड़ सका। यदि वह इस अन्नको आँखोंसे ग्रहण कर सकता तो अवश्य ही आजकल भी लोग अन्नको केवल देखकर ही तृप्त हो जाते; परंतु ऐसी बात नहीं देखी जाती॥ ५॥

तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेण ग्रहीतुं स यद्धैनच्छ्रोत्रेणाग्रहैष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत्॥ ६॥

(तब उस पुरुषने) **तत्**=उस अन्नको; **श्रोत्रेण**=कानोंद्वारा; **अजिघृक्षत्**=पकड़ना चाहा; (परंतु वह) **तत्**=उसको; **श्रोत्रेण**=कानोंद्वारा; **ग्रहीतुम् न अशक्नोत्**=नहीं पकड़ सका; **यत्**=यदि; **सः**=वह; **एनत्**=इसको; **श्रोत्रेण**=कानोंद्वारा; **ह**=ही; **अग्रहैष्यत्**=पकड़ लेता तो; **ह**=निस्सन्देह; (अब भी मनुष्य); **अन्नम्**=अन्नका नाम; **श्रुत्वा**=सुनकर; **एव**=ही; **अत्रप्स्यत्**=तृप्त हो जाता॥ ६॥

व्याख्या—फिर उस पुरुषने अन्नको कानों-द्वारा पकड़ना चाहा; परंतु वह उसको कानोंद्वारा भी नहीं पकड़ सका। यदि वह इसको कानोंसे पकड़ सकता तो अवश्य ही अब भी मनुष्य केवल अन्नका नाम सुनकर ही तृप्त हो जाते; परंतु यह देखनेमें नहीं आता॥ ६॥

तत्त्वचाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोत्त्वचा ग्रहीतुं स यद्धैनत्त्वचाग्रहैष्यत्स्पृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत्॥ ७॥

(तब उस पुरुषने) **तत्**=उसको; **त्वचा**=चमड़ीद्वारा; **अजिघृक्षत्**=पकड़ना चाहा; (परंतु) **तत्**=उसको; **त्वचा**=चमड़ीद्वारा; **ग्रहीतुम् न अशक्नोत्**=नहीं पकड़ सका; **यत्**=यदि; **सः**=वह; **एनत्**=इसको; **त्वचा**=चमड़ीद्वारा; **ह**=ही; **अग्रहैष्यत्**=पकड़ सकता तो; **ह**=अवश्य ही (अब भी मनुष्य); **अन्नम्**=अन्नको; **स्पृष्ट्वा**=छूकर; **एव**=ही; **अत्रप्स्यत्**=तृप्त हो जाता॥ ७॥

---

* घ्राण-इन्द्रियका विषय गन्ध, वायु और प्राणके सहयोगसे ही उक्त इन्द्रियद्वारा ग्रहण होता है तथा घ्राण-इन्द्रियके निवासस्थान नासिकाछिद्रोंसे ही प्राणका आवागमन होता है। इसलिये यहाँ घ्राणेन्द्रियके ही स्थानमें 'प्राण' शब्द प्रयुक्त हुआ है, यह जान पड़ता है; क्योंकि अन्तमें प्राणके ही एक भेद अपानद्वारा अन्नका ग्रहण होना बताया गया है। अतः यहाँ प्राणसे ग्रहण न किया जाना माननेसे पूर्वापरविरोध आयेगा।

व्याख्या—तब उस पुरुषने अन्नको चमड़ी-द्वारा पकड़ना चाहा; परंतु वह उसको चमड़ी-द्वारा भी नहीं पकड़ सका। यदि वह इसको चमड़ीद्वारा पकड़ पाता तो अवश्य ही आजकल भी मनुष्य अन्नको छूकर ही तृप्त हो जाते; परंतु ऐसी बात नहीं है॥ ७॥

तन्मनसाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोन्मनसा ग्रहीतुं स यद्धैनन्मनसाग्रहैष्यद्ध्यात्वा हैवान्नमत्रप्स्यत्॥ ८॥

(तब उस पुरुषने) **तत्**=उसको; **मनसा**=मनसे; **अजिघृक्षत्**=पकड़ना चाहा; (परंतु) **तत्**=उसको; **मनसा**=मनसे भी; **ग्रहीतुम् न अशक्नोत्**=नहीं पकड़ सका; **यत्**=यदि; **सः**=वह; **एनत्**=इसको; **मनसा**=मनसे; **ह**=ही; **अग्रहैष्यत्**=पकड़ लेता तो; **ह**=अवश्य ही (मनुष्य); **अन्नम्**=अन्नको; **ध्यात्वा**=चिन्तन करके; **एव**=ही; **अत्रप्स्यत्**=तृप्त हो जाता॥ ८॥

व्याख्या—तब उस पुरुषने अन्नको मनसे पकड़ना चाहा; परंतु वह उसको मनके द्वारा भी नहीं पकड़ सका। यदि वह इसको मनसे पकड़ पाता तो अवश्य ही आज भी मनुष्य अन्नका चिन्तन करके ही तृप्त हो जाते; परंतु ऐसी बात देखनेमें नहीं आती॥ ८॥

तच्छिश्नेनाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्छिश्नेन ग्रहीतुं स यद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यद्विसृज्य हैवान्नमत्रप्स्यत्॥ ९॥

(फिर उस पुरुषने) **तत्**=उस अन्नको; **शिश्नेन**=उपस्थके द्वारा; **अजिघृक्षत्**=ग्रहण करना चाहा; (परंतु) **तत्**=उसको; **शिश्नेन**=उपस्थके द्वारा भी; **ग्रहीतुम् न अशक्नोत्**=नहीं पकड़ सका; **यत्**=यदि; **सः**=वह; **एनत्**=इसको; **शिश्नेन**=उपस्थद्वारा; **ह**=ही; **अग्रहैष्यत्**=पकड़ पाता तो; **ह**=अवश्य ही (मनुष्य); **अन्नम् विसृज्य**=अन्नका त्याग करके; **एव**=ही; **अत्रप्स्यत्**=तृप्त हो जाता॥ ९॥

व्याख्या—फिर उस पुरुषने अन्नको उपस्थ (लिङ्ग) द्वारा पकड़ना चाहा; परंतु वह उसको उपस्थके द्वारा नहीं पकड़ सका। यदि वह उसको उपस्थद्वारा पकड़ पाता तो अवश्य ही अब भी मनुष्य अन्नका त्याग करके ही तृप्त हो जाते; परंतु यह देखनेमें नहीं आता॥ ९॥

तदपानेनाजिघृक्षत्तदावयत् सैषोऽन्नस्य ग्रहो यद्वायुरन्नायुर्वा एष यद्वायुः॥ १०॥

(अन्तमें उसने) **तत्**=उस अन्नको; **अपानेन**=अपानवायुके द्वारा; **अजिघृक्षत्**=ग्रहण करना चाहा; (इस बार उसने) **तत्**=उसको; **आवयत्**=ग्रहण कर लिया; **सः**=वह; **एषः**=यह अपानवायु ही; **अन्नस्य**=अन्नका; **ग्रहः**=ग्रह अर्थात् ग्रहण करनेवाला है; **यत्**=जो; **वायुः**=वायु; **अन्नायुः**=अन्नसे जीवनकी रक्षा करनेवालेके रूपमें; **वै**=प्रसिद्ध है; **यत्**=जो; **एषः**=यह; **वायुः**=अपानवायु है (वही वह वायु है)॥ १०॥

व्याख्या—अन्तमें उस पुरुषने अन्नको मुखके द्वारसे अपानवायुद्वारा ग्रहण करना चाहा अर्थात् अपानवायुद्वारा मुखसे शरीरमें प्रवेश करानेकी चेष्टा की; तब वह अन्नको अपने शरीरमें ले जा सका। वह अपानवायु जो बाहरसे शरीरके भीतर प्रश्वासके रूपमें जाता है, यही अन्नका ग्रह—उसको पकड़नेवाला अर्थात् भीतर ले जानेवाला है। प्राणवायुके सम्बन्धमें जो यह प्रसिद्धि है कि यही अन्नके द्वारा मनुष्यके जीवनकी रक्षा करनेवाला होनेसे साक्षात् आयु है, वह इस अपानवायुको लेकर ही है, जो प्राण आदि पाँच भेदोंमें विभक्त मुख्य प्राणका ही एक अंश है; इससे यह सिद्ध हुआ कि प्राण ही मनुष्यका जीवन है॥ १०॥

स ईक्षत कथं न्विदं मदृते स्यादिति स ईक्षत कतरेण प्रपद्या इति। स ईक्षत यदि वाचाभिव्याहृतं यदि प्राणेनाभिप्राणितं यदि चक्षुषा दृष्टं यदि श्रोत्रेण श्रुतं यदि त्वचा स्पृष्टं यदि मनसा ध्यातं यद्यपानेनाभ्यपानितं यदि शिश्नेन विसृष्टमथ कोऽहमिति॥ ११॥

सः=(तब) उस (सृष्टिके रचयिता परमेश्वर) ने; **ईक्षत**=सोचा कि; **नु**=निश्चय ही; **इदम्**=यह; **मत् ऋते**=मेरे बिना; **कथम्**=किस प्रकार; **स्यात्**=रहेगा; **इति**=यह सोचकर; (पुनः) **सः**=उसने; **ईक्षत**=विचार किया कि;

यदि=यदि; **वाचा**=(इस पुरुषने मेरे बिना ही केवल) वाणीद्वारा; **अभिव्याहृतम्**=बोलनेकी क्रिया कर ली; **यदि**=यदि; **प्राणेन**=घ्राण-इन्द्रियद्वारा; **अभिप्राणितम्**=सूँघनेकी क्रिया कर ली; **यदि**=यदि; **चक्षुषा**=नेत्रद्वारा; **दृष्टम्**=देख लिया; **यदि**=यदि; **श्रोत्रेण**=कर्ण-इन्द्रियद्वारा; **श्रुतम्**=सुन लिया; **यदि**=यदि; **त्वचा**=त्वक्-इन्द्रियद्वारा; **स्पृष्टम्**=स्पर्श कर लिया; **यदि**=यदि; **मनसा**=मनद्वारा; **ध्यातम्**=मनन कर लिया; **यदि**=यदि; **अपानेन**=अपानद्वारा; **अभ्यपानितम्**=अन्नग्रहण आदि अपान-सम्बन्धी क्रिया कर ली; (तथा) **यदि**=यदि; **शिश्नेन**=उपस्थसे; **विसृष्टम्**=मूत्र और वीर्यका त्याग कर लिया; **अथ**=तो फिर; **अहम्**=मैं; **कः**=कौन हूँ; **इति**=यह सोचकर; (पुनः) **सः**=उसने; **ईक्षत**=विचार किया कि; **कतरेण**=(पैर और मस्तक—इन दोनोंमेंसे) किस मार्गसे; **प्रपद्यै इति**=मुझे इसमें प्रवेश करना चाहिये॥ ११॥

व्याख्या—इस प्रकार जब लोक और लोकपालोंकी रचना हो गयी, उन सबके लिये आहार भी उत्पन्न हो गया तथा मनुष्य-शरीरधारी पुरुषने उस आहारको ग्रहण करना भी सीख लिया, तब उस सर्वस्त्रष्टा परमात्माने फिर विचार किया—'यह मनुष्यरूप पुरुष मेरे बिना कैसे रहेगा?' यदि इस जीवात्माके साथ मेरा सहयोग नहीं रहेगा तो यह अकेला किस प्रकार टिक सकेगा?* साथ ही यह भी विचार किया कि 'यदि मेरे सहयोगके बिना इस पुरुषने वाणीद्वारा बोलनेकी क्रिया कर ली, घ्राण-इन्द्रियसे सूँघनेका काम कर लिया, प्राणोंसे वायुको भीतर ले जाने और बाहर छोड़नेकी क्रिया कर ली, नेत्रेन्द्रियद्वारा देख लिया, कर्णेन्द्रियद्वारा सुन लिया, त्वक्-इन्द्रियद्वारा स्पर्श कर लिया, मनके द्वारा मनन कर लिया, अपानद्वारा अन्न निगल लिया और यदि जननेन्द्रियद्वारा मूत्र और वीर्यका त्याग करनेकी क्रिया सम्पन्न कर ली तो फिर मेरा क्या उपयोग रह गया? भाव यह कि मेरे बिना इन सब इन्द्रियोंद्वारा कार्य सम्पन्न कर लेना इसके लिये असम्भव है।' यह सोचकर परमात्माने विचार किया कि मैं इस मनुष्य-शरीरमें पैर और मस्तक—इन दोमेंसे किस मार्गसे प्रविष्ट होऊँ?॥ ११॥

स एतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत। सैषा विदृतिर्नाम द्वास्तदेतन्नान्दनम्। तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्नाः, अयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति॥ १२॥

(यों विचारकर); **सः**=उसने; **एतम् एव**=इस (मनुष्य-शरीरकी); **सीमानम्**=सीमाको; **विदार्य**=चीरकर; **एतया द्वारा**=इसके द्वारा; **प्रापद्यत**=उस सजीव शरीरमें प्रवेश किया; **सा**=वह; **एषा**=यह; **द्वाः**=द्वार; **विदृतिः नाम**=विदृति नामसे प्रसिद्ध है; **तत्**=वही; **एतत्**=यह; **नान्दनम्**=आनन्द देनेवाला अर्थात् ब्रह्म-प्राप्तिका द्वार है; **तस्य**=उस परमेश्वरके; **त्रयः**=तीन; **आवसथाः**=आश्रय (उपलब्धि-स्थान) हैं; **त्रयः**=तीन; **स्वप्नाः**=स्वप्न हैं; **अयम्**=यह (हृदय-गुहा); **आवसथः**=एक स्थान है; **अयम्**=यह (परमधाम); **आवसथः**=दूसरा स्थान है; **अयम्**=यह (सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड); **आवसथः इति**=तीसरा स्थान है॥ १२॥

व्याख्या—परमात्मा इस मनुष्य-शरीरकी सीमा (मूर्धा) को अर्थात् ब्रह्मरन्ध्रको चीरकर (उसमें छेद करके) इसके द्वारा उस सजीव मनुष्य-शरीरमें प्रविष्ट हो गये। वह यह द्वार विदृति (विदीर्ण किया हुआ द्वार) नामसे प्रसिद्ध है। वही यह विदृति नामका द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) आनन्द देनेवाला अर्थात् आनन्दस्वरूप परमात्माकी प्राप्ति करानेवाला है। परमेश्वरकी उपलब्धिके तीन स्थान हैं और स्वप्न भी तीन हैं। एक तो यह हृदयाकाश उनकी उपलब्धिका स्थान है। दूसरा विशुद्ध आकाशरूप परमधाम है—जिसको सत्यलोक, गोलोक, ब्रह्मलोक, साकेतलोक, कैलास आदि अनेक नामोंसे पुकारा जाता है। तीसरा यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है तथा इस जगत्की जो स्थूल, सूक्ष्म और कारणरूप तीन अवस्थाएँ हैं, वे ही इसके तीन स्वप्न हैं॥ १२॥

स जातो भूतान्यभिव्यैख्यत् किमिहान्यं वावदिषदिति। स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यत्। इदमदर्शमिती३॥ १३॥

* इसीलिये तो भगवान्ने गीतामें कहा है कि समस्त भूतोंका जो कारण है, वह मैं हूँ। ऐसा कोई भी चराचर प्राणी नहीं है, जो मुझसे रहित हो (१०।३९)।

जातः सः=मनुष्यरूपमें प्रकट हुए उस पुरुषने; **भूतानि**=पञ्च महाभूतोंकी अर्थात् भौतिक जगत्की रचनाको; **अभिव्यैरख्यत्**=चारों ओरसे देखा; (और) **इह**=यहाँ; **अन्यम्**=दूसरा; **किम्**=कौन है; **इति**=यह; **वावदिषत्**=कहा; **सः**=(तब) उसने; **एतम्**=इस; **पुरुषम्**=अन्तर्यामी परम पुरुषको; **एव**=ही; **ततमम्**=सर्वव्यापी; **ब्रह्म**=परब्रह्मके रूपमें; **अपश्यत्**=देखा; (और यह प्रकट किया) [**अहो**] **इती३**=अहो! बड़े सौभाग्यकी बात है कि; **इदम्**=इस परब्रह्म परमात्माको; **अदर्शम्**=मैंने देख लिया॥ १३॥

व्याख्या—मनुष्यरूपमें उत्पन्न हुए उस पुरुषने इस भौतिक जगत्की विचित्र रचनाको बड़े आश्चर्यपूर्वक चारों ओरसे देखा और मन-ही-मन इस प्रकार कहा—'इस विचित्र जगत्की रचना करनेवाला यहाँ दूसरा कौन है? क्योंकि यह मेरी की हुई रचना तो है नहीं और कार्य होनेके कारण इसका कोई-न-कोई कर्ता अवश्य होना चाहिये।' इस प्रकार विचार करनेपर उस साधकने अपने हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान पुरुषको ही इस सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त परब्रह्मके रूपमें प्रत्यक्ष किया। तब वह आनन्दमें भरकर मन-ही-मन कहने लगा—'अहो! बड़े ही सौभाग्यकी बात है कि मैंने परब्रह्म परमात्माको देख लिया—साक्षात् कर लिया।'

इससे यह भाव प्रकट किया गया है कि इस जगत्की विचित्र रचनाको देखकर इसके कर्ता-धर्ता परमात्माकी सत्तामें विश्वास करके यदि मनुष्य उन्हें जानने और पानेको उत्सुक हो, उन्हींपर निर्भर होकर चेष्टा करे तो अवश्य ही उन्हें जान सकता है। परमात्माको जानने और पानेका काम इस मनुष्य-शरीरमें ही हो सकता है, दूसरे शरीरमें नहीं। अतः मनुष्यको अपने जीवनके अमूल्य समयका सदुपयोग करना चाहिये, उसे व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिये। इस अध्यायमें मानो परमात्माकी महिमाका और मनुष्य-शरीरके महत्त्वका दिग्दर्शन करानेके लिये ही सृष्टि-रचनाका वर्णन किया गया है॥ १३॥

तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो ह वै नाम। तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण। परोक्षप्रिया इव हि देवाः परोक्षप्रिया इव हि देवाः॥ १४॥

तस्मात्=इसीलिये; **इदन्द्रः नाम**=वह 'इदन्द्र' नामवाला है; **ह**=वास्तवमें; **इदन्द्रः नाम वै**=वह 'इदन्द्र' नामवाला ही है; (परंतु) **इदन्द्रम्**=इदन्द्र; **सन्तम्**=होते हुए ही; **तम्**=उस परमात्माको; **परोक्षेण**=परोक्षभावसे (गुप्त नामसे); **इन्द्रः**='इन्द्र'; **इति**=यों; **आचक्षते**=पुकारते हैं; **हि**=क्योंकि; **देवाः**=देवतालोग; **परोक्षप्रियाः इव**=मानो परोक्षभावसे कही हुई बातको पसंद करनेवाले होते हैं; **हि देवाः परोक्षप्रियाः इव**=देवतालोग मानो परोक्षभावसे कही हुई बातोंको ही पसंद करनेवाले होते हैं॥ १४॥

व्याख्या—परब्रह्म परमात्माको उस मनुष्य-शरीरमें उत्पन्न हुए पुरुषने पूर्वोक्त प्रकारसे प्रत्यक्ष कर लिया, इसी कारण परमात्माका नाम 'इदन्द्र' है। अर्थात् '**इदम्+द्रः**=इसको मैंने देख लिया' इस व्युत्पत्तिके अनुसार उनका 'इदन्द्र' नाम है। इस प्रकार यद्यपि उस परमात्माका नाम 'इदन्द्र' ही है, फिर भी लोग उन्हें परोक्षभावसे 'इन्द्र' कहकर पुकारते हैं; क्योंकि देवतालोग मानो छिपाकर ही कुछ कहना पसंद करते हैं। '**परोक्षप्रिया इव हि देवाः**' इस अन्तिम वाक्यको दुबारा कहकर इस खण्डकी समाप्ति सूचित की गयी है॥ १४॥

॥ तृतीय खण्ड समाप्त॥ ३॥

॥ प्रथम अध्याय समाप्त॥ १॥

ॐ

द्वितीय अध्याय

सम्बन्ध—*प्रथम अध्यायमें सृष्टिकी उत्पत्तिका क्रम और मनुष्य-शरीरका महत्त्व बताया गया और यह बात भी संकेतसे कही गयी कि जीवात्मा इस शरीरमें परमात्माको जानकर कृतकृत्य हो सकता है। अब इस शरीरकी अनित्यता दिखाकर वैराग्य उत्पन्न करनेके लिये इस अध्यायमें मनुष्य-शरीरकी उत्पत्तिका वर्णन किया जाता है—*

पुरुषे ह वा अयमादितो गर्भो भवति। यदेतद्रेतस्तदेतत्सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः सम्भूतमात्मन्येवात्मानं बिभर्ति। तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैनज्जनयति तदस्य प्रथमं जन्म॥ १॥

अयम्=यह (संसारी जीव); **ह**=निश्चयपूर्वक; **आदितः**=पहले पहल; **पुरुषे**=पुरुष-शरीरमें; **वै**=ही; **गर्भः भवति**=वीर्यरूपसे गर्भ बनता है; **यत्**=जो; **एतत्**=यह; (पुरुषमें) **रेतः**=वीर्य है; **तत्**=वह; **एतत्**=यह (पुरुषके); **सर्वेभ्यः**=सम्पूर्ण; **अङ्गेभ्यः**=अङ्गोंसे; **सम्भूतम्**=उत्पन्न हुआ; **तेजः**=तेज है; **आत्मानम्**=(यह पुरुष पहले तो) अपने ही स्वरूपभूत इस वीर्यमय तेजको; **आत्मनि**=अपने शरीरमें; **एव**=ही; **बिभर्ति**=धारण करता है; (फिर) **यदा**=जब; (यह) **तत्**=उसको; **स्त्रियाम्**=स्त्रीमें; **सिञ्चति**=सिंचन करता है; **अथ**=तब; **एनत्**=इसको; **जनयति**=गर्भरूपमें उत्पन्न करता है; **तत्**=वह; **अस्य**=इसका; **प्रथमम्**=पहला; **जन्म**=जन्म है॥ १॥

व्याख्या—यह संसारी जीव, पहले-पहल पुरुष-शरीरमें (पिताके शरीरमें) वीर्यरूपसे गर्भ बनता है—प्रकट होता है। पुरुषके शरीरमें जो यह वीर्य है, वह सम्पूर्ण अङ्गोंमेंसे निकलकर उत्पन्न हुआ तेज (सार) है। यह पिता अपने स्वरूपभूत उस वीर्यरूप तेजको पहले तो अपने शरीरमें ही धारण-पोषण करता है—ब्रह्मचर्यके द्वारा बढ़ाता एवं पुष्ट करता है; फिर जब यह उसको स्त्रीके गर्भाशयमें सिंचन (स्थापित) करता है, तब इसे गर्भरूपमें उत्पन्न करता है। वह माताके शरीरमें प्रवेश करना ही इसका पहला जन्म है॥ १॥

तत्स्त्रिया आत्मभूतं गच्छति। यथा स्वमङ्गं तथा। तस्मादेनां न हिनस्ति। सास्यैतमात्मानमत्रगतं भावयति॥ २॥

तत्=वह (गर्भ); **स्त्रियाः**=स्त्रीके; **आत्मभूतम्**=आत्मभावको; **गच्छति**=प्राप्त हो जाता है; **यथा**=जैसे; **स्वम्**=अपना; **अङ्गम्**=अङ्ग होता है; **तथा**=वैसे ही (हो जाता है); **तस्मात्**=इसी कारणसे; **एनाम्**=इस स्त्रीको; **न हिनस्ति**=वह पीड़ा नहीं देता; **सा**=वह स्त्री (माता); **अत्रगतम्**=यहाँ (अपने शरीरमें) आये हुए; **अस्य**=उस (अपने पति) के; **आत्मानम्**=आत्मारूप (स्वरूपभूत); **एतम् भावयति**=इस गर्भका पालन-पोषण करती है॥ २॥

व्याख्या—उस स्त्री (माता)-के शरीरमें आया हुआ वह गर्भ—पिताके द्वारा स्थापित किया हुआ तेज उस स्त्रीके आत्मभावको प्राप्त हो जाता है—अर्थात् जैसे उसके दूसरे अङ्ग हैं, उसी प्रकार वह गर्भ भी उसके शरीरका एक अङ्ग-सा ही हो जाता है। यही कारण है कि वह गर्भ उस स्त्रीके उदरमें रहता हुआ भी गर्भिणी स्त्रीको पीड़ा नहीं पहुँचाता—उसे भाररूप नहीं प्रतीत होता। वह स्त्री अपने शरीरमें आये हुए अपने पतिके आत्मारूप इस गर्भको अपने अङ्गोंकी भाँति ही भोजनके रससे पुष्ट करती है और अन्य सब प्रकारके आवश्यक नियमोंका पालन करके उसकी भलीभाँति रक्षा करती है॥ २॥

सा भावयित्री भावयितव्या भवति। तं स्त्री गर्भं बिभर्ति। सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति। स यत्कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयत्यात्मानमेव तद्भावयत्येषां लोकानां सन्तत्या। एवं सन्तता हीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म॥ ३॥

सा=वह; **भावयित्री**=उस गर्भका पालन-पोषण करनेवाली स्त्री; **भावयितव्या**=पालन-पोषण करनेयोग्य; **भवति**=होती है; **तम् गर्भम्**=उस गर्भको; **अग्रे**=प्रसवके पहलेतक; **स्त्री**=स्त्री (माता); **बिभर्ति**=धारण करती है;

जन्मनः अधि=(फिर) जन्म लेनेके बाद; **सः**=वह (उसका पिता); **अग्रे**=पहले; **एव**=ही; **कुमारम्**=उस कुमारको; (जातकर्म आदि संस्कारोंद्वारा) **भावयति**=अभ्युदयशील बनाता तथा उसकी उन्नति करता है; **सः**=वह (पिता); **यत्**=जो; **जन्मनः अधि**=जन्म लेनेके बाद; **अग्रे [एव]**=पहले ही; **कुमारम् भावयति**=बालककी उन्नति करता है; **तत्**=वह (मानो); **एषाम्**=इन; **लोकानाम्**=लोकोंको (मनुष्योंको); **संतत्या**=बढ़ानेके द्वारा; **आत्मानम् एव भावयति**=अपनी ही उन्नति करता है; **हि**=क्योंकि; **एवम्**=इसी प्रकार; **इमे**=ये सब; **लोकाः**=लोक (मनुष्य); **संतताः**=विस्तारको प्राप्त हुए हैं; **तत्**=वह; **अस्य**=इसका; **द्वितीयम्**=दूसरा; **जन्म**=जन्म है॥ ३॥

व्याख्या—अपने पतिके आत्मस्वरूप उस गर्भकी सब प्रकारसे रक्षा करनेवाली गर्भिणी स्त्री घरके लोगोंद्वारा और विशेषतः उसके पतिद्वारा पालन-पोषण करनेयोग्य होती है अर्थात् घरके लोगोंका और पतिका यह परम आवश्यक कर्तव्य है कि वे सब मिलकर उसके खान-पान और रहन-सहनकी सुव्यवस्था करके सब प्रकारसे उसकी सँभाल रखें। उस गर्भको पहले अर्थात् प्रसव होनेतक तो स्त्री (माता) अपने शरीरमें धारण करती है; फिर जन्म लेनेके बाद—जन्म लेते ही वह उसका पिता जातकर्म आदि संस्कारोंसे और नाना प्रकारके उपचारोंसे उस कुमारको अभ्युदयशील बनाता है तथा जन्मसे लेकर जबतक वह सर्वथा योग्य न बन जाय, तबतक हर प्रकारसे उसका पालन-पोषण करता है—नाना प्रकारकी विद्या और शिल्पादिका अध्ययन कराके उसे सब प्रकारसे उन्नत बनाता है। वह पिता जन्मके बाद उस बालकको उपयुक्त बना देनेके पहले-पहले जो उसकी रक्षा करता है, उसे सब प्रकारसे योग्य बनाता है, वह मानो इन लोकोंको अर्थात् मनुष्योंकी परम्पराको बढ़ानेके द्वारा अपनी ही रक्षा करता है; क्योंकि इसी प्रकार एक-से-एक उत्पन्न होकर ये सब मनुष्य विस्तारको प्राप्त हुए हैं। यह जो इस जीवका गर्भसे बाहर आकर बालकरूपमें उत्पन्न होना है, वह इसका दूसरा जन्म है।

इस वर्णनसे पिता और पुत्र दोनोंको अपने-अपने कर्तव्यकी शिक्षा दी गयी है। पुत्रको तो यह समझना चाहिये कि उसपर अपने माता-पिताका बड़ा भारी उपकार है; अतः वह उनकी जितनी सेवा कर सके, थोड़ी है और पिताको इस प्रकारका अभिमान नहीं करना चाहिये कि मैंने इसका उपकार किया है, वरं यह समझना चाहिये कि मैंने अपनी ही वृद्धि करके अपने कर्तव्यका पालन किया है॥ ३॥

सोऽस्यायमात्मा पुण्येभ्यः प्रतिधीयते। अथास्यायमितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति। स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयं जन्म॥ ४॥

सः=वह (पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ); **अयम्**=यह; **आत्मा**=(पिताका ही) आत्मा; **अस्य**=इस पिताके (द्वारा आचरणीय); **पुण्येभ्यः**=शुभकर्मोंके लिये; **प्रतिधीयते**=उसका प्रतिनिधि बना दिया जाता है; **अथ**=उसके अनन्तर; **अस्य**=इस (पुत्र) का; **अयम्**=यह (पितारूप); **इतरः**=दूसरा; **आत्मा**=आत्मा; **कृतकृत्यः**=अपना कर्तव्य पूरा करके; **वयोगतः**=आयु पूरी होनेपर; **प्रैति**=(यहाँसे) मरकर चला जाता है; **सः**=वह; **इतः**=यहाँसे; **प्रयन्**=जाकर; **एव**=ही; **पुनः**=पुनः; **जायते**=उत्पन्न हो जाता है; **तत्**=वह; **अस्य**=इसका; **तृतीयम्**=तीसरा; **जन्म**=जन्म है॥ ४॥

व्याख्या—पूर्वोक्त प्रकारसे इस पिताका ही आत्मस्वरूप पुत्र जब कार्य करनेयोग्य हो जाता है, तब वह पिता उसको अपना प्रतिनिधि बना देता है—अग्निहोत्र, देवपूजा और अतिथि-सेवा आदि वैदिक और लौकिक जितने भी शुभ कर्म हैं, उन सबका भार पुत्रको सौंप देता है। गृहस्थका पूरा दायित्व पुत्रपर छोड़कर स्वयं कृतकृत्य हो जाता है अर्थात् अपनेको पितृ-ऋणसे मुक्त मानता है। उसके बाद इस शरीरकी आयु पूर्ण होनेपर जब वह (पिता) इसे छोड़कर यहाँसे विदा हो जाता है, तब यहाँसे जाकर दूसरी जगह कर्मानुसार जहाँ जिस योनिमें जन्म लेता है, वह इसका तीसरा जन्म है। इसी तरह यह जन्म-जन्मान्तरकी परम्परा चलती रहती है।

जबतक जन्म-मृत्युके महान् कष्टकी आलोचना करके इससे छुटकारा पानेके लिये जीवात्मा मनुष्य-शरीरमें चेष्टा नहीं करता, तबतक यह परम्परा नहीं टूटती। अतः इसके लिये मनुष्यको अवश्य चेष्टा करनी चाहिये। यही इस प्रकरणका उद्देश्य प्रतीत होता है॥ ४॥

सम्बन्ध—*इस प्रकार बार-बार जन्म लेना और मरना एक भयानक यन्त्रणा है और जबतक यह जीव इस रहस्यको समझकर इस शरीररूप पिंजरेको काटकर इससे सर्वथा अलग न हो जायगा, तबतक इसका इस जन्म-मृत्युरूप यन्त्रणासे छुटकारा नहीं होगा—यह भाव अगले दो मन्त्रोंमें वामदेव ऋषिके दृष्टान्तसे समझाया जाता है—*

तदुक्तमृषिणा—

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नधः श्येनो जवसा निरदीयमिति।
गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच॥ ५॥

तत्=वही बात (इस प्रकार); **ऋषिणा**=ऋषिद्वारा; **उक्तम्**=कही गयी है; **नु**=अहो; **अहम्**=मैंने; **गर्भे**=गर्भमें; **सन्**=रहते हुए ही; **एषाम्**=इन; **देवानाम्**=देवताओंके; **विश्वा**=बहुत-से; **जनिमानि**=जन्मोंको; **अन्ववेदम्**=भलीभाँति जान लिया; **मा**=मुझे; **शतम्**=सैकड़ों; **आयसीः**=लोहेके समान कठोर; **पुरः**=शरीरोंने; **अरक्षन्**=अवरुद्ध कर रखा था; **अधः**=अब (मैं); **श्येनः**=बाज पक्षी (की भाँति); **जवसा**=वेगसे; **निरदीयम् इति**=उन सबको तोड़कर उनसे अलग हो गया हूँ; **गर्भे**=गर्भमें; **एव**=ही; **शयानः**=सोये हुए; **वामदेवः**=वामदेव ऋषिने; **एवम्**=उक्त प्रकारसे; **एतत्**=यह बात; **उवाच**=कही॥ ५॥

व्याख्या—उपर्युक्त चार मन्त्रोंमें कही हुई बातका ही रहस्य यहाँ ऋषिद्वारा बताया गया है। गर्भमें रहते हुए ही अर्थात् गर्भके बाहर आनेसे पहले ही वामदेव ऋषिको यथार्थ ज्ञान हो गया था, इसलिये उन्होंने माताके उदरमें ही कहा था—'अहो! कितने आश्चर्य और आनन्दकी बात है कि गर्भमें रहते-रहते ही मैंने इन अन्तःकरण और इन्द्रियरूप देवताओंके अनेक जन्मोंका रहस्य भलीभाँति जान लिया अर्थात् मैं इस बातको जान गया कि ये जन्म आदि वास्तवमें इन अन्तःकरण और इन्द्रियोंके ही होते हैं, आत्माके नहीं। इस रहस्यको समझनेसे पहले मुझे सैकड़ों लोहेके समान कठोर शरीररूपी पिंजरोंने अवरुद्ध कर रखा था। उनमें मेरी ऐसी दृढ़ अहंता हो गयी थी कि उनसे छूटना मेरे लिये कठिन हो रहा था। अब मैं बाज पक्षीकी भाँति ज्ञानरूप बलके वेगसे उन सबको तोड़कर उनसे अलग हो गया हूँ। उन शरीररूप पिंजरोंसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा, मैं सदाके लिये उन शरीरोंकी अहंतासे मुक्त हो गया हूँ॥ ५॥

स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान्कामानाप्त्वामृतः समभवत् समभवत्॥ ६॥

एवम्=इस प्रकार; **विद्वान्**=(जन्म-जन्मान्तरके रहस्यको) जाननेवाला; **सः**=वह वामदेव ऋषि; **अस्मात्**=इस; **शरीरभेदात्**=शरीरका नाश होनेपर; **ऊर्ध्वः उत्क्रम्य**=संसारके ऊपर उठ गया और ऊर्ध्वगतिके द्वारा; **अमुष्मिन्**=उस; **स्वर्गे लोके**=परमधाममें (पहुँचकर); **सर्वान्**=समस्त; **कामान्**=कामनाओंको; **आप्त्वा**=प्राप्त करके; **अमृतः**=अमृत; **समभवत्**=हो गया; **समभवत्**=हो गया॥ ६॥

व्याख्या—इस प्रकार जन्म-जन्मान्तरके तत्त्वको अर्थात् जबतक यह जीव इन शरीरोंके साथ एक हुआ रहता है, शरीरको ही अपना स्वरूप माने रहता है, तबतक इसका जन्म-मृत्युसे छुटकारा नहीं होता, इसको बार-बार नाना योनियोंमें जन्म लेकर नाना प्रकारके कष्ट भोगने पड़ते हैं—इस रहस्यको समझनेवाला वह ज्ञानी वामदेव ऋषि गर्भसे बाहर आकर अन्तमें शरीरका नाश होनेपर संसारसे ऊपर उठ गया तथा ऊर्ध्वगतिके द्वारा भगवान्‌के परमधाममें पहुँचकर वहाँ समस्त कामनाओंको पाकर अर्थात् सर्वथा आप्तकाम होकर अमृत हो गया! अमृत हो गया! जन्म-मृत्युके चक्रसे सदाके लिये छूट गया। '**समभवत्**' पदको दुहराकर यहाँ अध्यायकी समाप्तिको सूचित किया गया है॥ ६॥

॥ द्वितीय अध्याय समाप्त॥ २॥

ॐ

तृतीय अध्याय

कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे। कतरः स आत्मा, येन वा पश्यति येन वा शृणोति येन वा गन्धानाजिघ्रति येन वा वाचं व्याकरोति येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति॥ १॥

वयम्=हमलोग; **उपास्महे**=जिसकी उपासना करते हैं; [**सः**]=वह **अयम्**=यह; **आत्मा**=आत्मा; **कः इति**=कौन है; **वा**=अथवा; **येन**=जिससे; **पश्यति**=मनुष्य देखता है; **वा**=या; **येन**=जिससे; **शृणोति**=सुनता है; **वा**=अथवा; **येन**=जिससे; **गन्धान्**=गन्धोंको; **आजिघ्रति**=सूँघता है; **वा**=अथवा; **येन**=जिससे; **वाचम्**=वाणीको; **व्याकरोति**=स्पष्ट बोलता है; **वा**=या; **येन**=जिससे; **स्वादु**=स्वादयुक्त; **च**=और; **अस्वादु**=स्वादहीन वस्तुको; **च**=भी; **विजानाति**=अलग-अलग जानता है; **सः**=वह; **आत्मा**=आत्मा; **कतरः**=(पिछले अध्यायोंमें कहे हुए दो आत्माओंमेंसे) कौन है*॥ १॥

व्याख्या—इस उपनिषद्के पहले और दूसरे अध्यायोंमें दो आत्माओंका वर्णन आया है—एक तो वह आत्मा (परमात्मा), जिसने इस सृष्टिकी रचना की और सजीव पुरुषको प्रकट करके उसका सहयोग देनेके लिये स्वयं उसमें प्रविष्ट हुआ; दूसरा वह आत्मा (जीवात्मा), जिसको सजीव पुरुषरूपमें उसने प्रकट किया था और जिसके जन्म-जन्मान्तरकी परम्पराका वर्णन दूसरे अध्यायमें गर्भमें आनेसे लेकर मरणपर्यन्त किया गया है। इनमेंसे उपास्य देव कौन है, वह कैसा है, उसकी क्या पहचान है—इन बातोंका निर्णय करनेके लिये यह तीसरा अध्याय कहा गया है। मन्त्रका तात्पर्य यह है कि उस उपास्यदेव परमात्माके तत्त्वको जाननेकी इच्छावाले कुछ मनुष्य आपसमें विचार करने लगे—'जिसकी हमलोग उपासना करते हैं अर्थात् जिसकी उपासना करके हमें उसे प्राप्त करना चाहिये, वह आत्मा कौन है? दूसरे शब्दोंमें जिसके सहयोगसे मनुष्य नेत्रोंके द्वारा समस्त दृश्य देखता है, जिससे कानोंद्वारा शब्द सुनता है, जिससे घ्राणेन्द्रियके द्वारा नाना प्रकारकी गन्ध सूँघता है, जिससे वाणीद्वारा वचन बोलता है, जिससे रसनाद्वारा स्वादयुक्त और स्वादहीन वस्तुको अलग-अलग पहचान लेता है, वह पहले और दूसरे अध्यायोंमें वर्णित दो आत्माओंमेंसे कौन है?॥ १॥

यदेतद्धृदयं मनश्चैतत्। संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति॥ २॥

यत्=जो; **एतत्**=यह; **हृदयम्**=हृदय है; **एतत्**=यही; **मनः**=मनः; **च**=भी है; **संज्ञानम्**=सम्यक् ज्ञान-शक्ति; **आज्ञानम्**=आज्ञा देनेकी शक्ति; **विज्ञानम्**=विभिन्न रूपसे जाननेकी शक्ति; **प्रज्ञानम्**=तत्काल जाननेकी शक्ति; **मेधा**=धारण करनेकी शक्ति; **दृष्टिः**=देखनेकी शक्ति; **धृतिः**=धैर्य; **मतिः**=बुद्धि; **मनीषा**=मनन-शक्ति; **जूतिः**=वेग; **स्मृतिः**=स्मरण-शक्ति; **संकल्पः**=संकल्प-शक्ति; **क्रतुः**=मनोरथ-शक्ति; **असुः**=प्राण-शक्ति; **कामः**=कामना-शक्ति; **वशः**=स्त्री-संसर्ग आदिकी अभिलाषा; **इति**=इस प्रकार; **एतानि**=ये; **सर्वाणि**=सब-के-सब; **प्रज्ञानस्य**=स्वच्छ ज्ञानस्वरूप परमात्माके; **एव**=ही; **नामधेयानि**=नाम अर्थात् उसकी सत्ताके बोधक लक्षण; **भवन्ति**=हैं॥ २॥

व्याख्या—इस प्रकार विचार उपस्थित करके उन्होंने सोचा कि जो यह हृदय अर्थात् अन्तःकरण है; यही पहले बताया हुआ मन है; इस मनकी जो यह सम्यक् प्रकारसे जाननेकी शक्ति देखनेमें आती है—अर्थात् जो दूसरोंपर आज्ञाद्वारा शासन करनेकी शक्ति, पदार्थोंका अलग-अलग विवेचन करके जाननेकी शक्ति, देखे-सुने हुए पदार्थोंको तत्काल समझ लेनेकी शक्ति, अनुभवको धारण करनेकी शक्ति, देखनेकी शक्ति, धैर्य

---

* केनोपनिषद्के आरम्भकी इसके साथ बहुत अंशोंमें समानता है।

अर्थात् विचलित न होनेकी शक्ति, बुद्धि अर्थात् निश्चय करनेकी शक्ति, मनन करनेकी शक्ति, वेग अर्थात् क्षणभरमें कहीं-से-कहीं चले जानेकी शक्ति, स्मरण-शक्ति, संकल्प-शक्ति, मनोरथ-शक्ति, प्राण-शक्ति, कामना-शक्ति और स्त्री-सहवास आदिकी अभिलाषा—इस प्रकार जो ये शक्तियाँ हैं, वे सब-की-सब उस स्वच्छ ज्ञानस्वरूप परमात्माके नाम हैं अर्थात् उसकी सत्ताका बोध करानेवाले लक्षण हैं; इन सबको देखकर इन सबके रचयिता, संचालक और रक्षककी सर्वव्यापिनी सत्ताका ज्ञान होता है॥ २॥

एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्च महाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतींषीत्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि च जारुजानि च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो यत्किंचेदं प्राणि जङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरं सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रम्। प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म॥ ३॥

एषः=यह; **ब्रह्मा**=ब्रह्मा है; **एषः**=यह; **इन्द्रः**=इन्द्र है; **एषः**=यही; **प्रजापतिः**=प्रजापति है; **एते**=ये; **सर्वे**=समस्त; **देवाः**=देवता; **च**=तथा; **इमानि**=ये; **पृथिवी**=पृथ्वी; **वायुः**=वायु; **आकाशः**=आकाश; **आपः**=जल; और **ज्योतींषि**=तेज; **इति**=इस प्रकार; **एतानि**=ये; **पञ्च**=पाँच; **महाभूतानि**=महाभूत; **च**=तथा; **इमानि**=ये; **क्षुद्रमिश्राणि इव**=छोटे-छोटे, मिले हुए-से; **बीजानि**=बीजरूप समस्त प्राणी; **च**=और; **इतराणि**=इनसे भिन्न; **इतराणि**=दूसरे; **च**=भी; **अण्डजानि**=अंडेसे उत्पन्न होनेवाले; **च**=एवं; **जारुजानि**=जेरसे उत्पन्न होनेवाले; **च**=तथा; **स्वेदजानि**=पसीनेसे उत्पन्न होनेवाले; **च**=और; **उद्भिज्जानि**=जमीन फोड़कर उत्पन्न होनेवाले; **च**=तथा; **अश्वाः**=घोड़े; **गावः**=गायें; **हस्तिनः**=हाथी; **पुरुषाः**=मनुष्य (ये सब-के-सब मिलकर); **यत्**=जो; **किम्**=कुछ; **च**=भी; **इदम्**=यह जगत् है; **यत् च**=जो भी कोई; **पतत्रि**=पाँखोंवाला; **च**=और; **जङ्गमम्**=चलने-फिरनेवाला; **च**=और; **स्थावरम्**=नहीं चलनेवाला; **प्राणि**=प्राणिसमुदाय है; **तत्**=वह; **सर्वम्**=सब; **प्रज्ञानेत्रम्**=प्रज्ञानस्वरूप परमात्मासे शक्ति पाकर ही अपने-अपने कार्यमें समर्थ होनेवाले हैं (और); **प्रज्ञाने**=उस प्रज्ञानस्वरूप परमात्मामें ही; **प्रतिष्ठितम्**=स्थित हैं; **लोकः**=(यह समस्त) ब्रह्माण्ड; **प्रज्ञानेत्रः**=प्रज्ञानस्वरूप परमात्मासे ही ज्ञान-शक्तियुक्त है; **प्रज्ञा**=प्रज्ञानस्वरूप परमात्मा ही; **प्रतिष्ठा**=इस स्थितिका आधार है; **प्रज्ञानम्**=यह प्रज्ञान ही; **ब्रह्म**=ब्रह्म है॥ ३॥

व्याख्या—इस प्रकार विचार करके उन्होंने निश्चय किया कि सबको उत्पन्न करके सब प्रकारकी शक्ति प्रदान करनेवाले और उनकी रक्षा करनेवाले स्वच्छ ज्ञानस्वरूप परमात्मा ही उपास्यदेव हैं। ये ही ब्रह्मा हैं, ये ही पहले अध्यायमें वर्णित इन्द्र हैं। ये ही सबकी उत्पत्ति और पालन करनेवाले समस्त प्रजाओंके स्वामी प्रजापति हैं। ये सब इन्द्रादि देवता, ये पाँचों महाभूत—जो पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेजके रूपमें प्रकट हैं तथा ये छोटे-छोटे मिले हुए-से बीजरूपमें स्थित समस्त प्राणी; तथा उनसे भिन्न दूसरे भी—अर्थात् अंडेसे उत्पन्न होनेवाले, जेरसे उत्पन्न होनेवाले, पसीनेसे अर्थात् शरीरके मैलसे उत्पन्न होनेवाले और जमीन फोड़कर उत्पन्न होनेवाले तथा घोड़े, गाय, हाथी, मनुष्य—ये सब मिलकर जो कुछ यह जगत् है; जो भी कोई पंखोंवाले तथा चलने-फिरनेवाले और नहीं चलनेवाले जीवोंके समुदाय हैं—वे सब-के-सब प्राणी प्रज्ञानस्वरूप परमात्मासे शक्ति पाकर ही अपने-अपने कार्यमें समर्थ होते हैं और उन प्रज्ञानस्वरूप परमात्मामें ही स्थित हैं। यह समस्त ब्रह्माण्ड प्रज्ञानस्वरूप परमात्माकी शक्तिसे ही ज्ञान-शक्तियुक्त है। इसकी स्थितिके आधार, प्रज्ञानस्वरूप परमात्मा ही हैं। अतः जिनको पहले इन्द्र और प्रजापतिके नामसे कहा गया है, जो सबकी रचना और रक्षा करनेवाले तथा सबको सब प्रकारकी शक्ति देनेवाले प्रज्ञानस्वरूप परमात्मा हैं, वे ही हमारे उपास्यदेव ब्रह्म हैं—यह निश्चय हुआ॥ ३॥

स एतेन प्रज्ञेनात्मनास्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वामृतः समभवत्समभवत्॥ ४॥

सः=वह; **अस्मात्**=इस; **लोकात्**=लोकसे; **उत्क्रम्य**=ऊपर उठकर; **अमुष्मिन्**=उस; **स्वर्गे लोके**=परमधाममें; **एतेन**=इस; **प्रज्ञेन आत्मना**=प्रज्ञानस्वरूप ब्रह्मके सहित; **सर्वान्**=सम्पूर्ण; **कामान्**=दिव्य भोगोंको; **आप्त्वा**=प्राप्त होकर; **अमृतः**=अमर; **समभवत्**=हो गया; **समभवत्**=हो गया॥ ४॥

व्याख्या—जिसने इस प्रकार प्रज्ञानस्वरूप परमेश्वरको जान लिया, वह इस लोकसे ऊपर उठकर अर्थात् शरीरका त्याग करके उस परमानन्दमय परम-धाममें, जिसके स्वरूपका पूर्वमन्त्रमें वर्णन किया गया है, इस प्रज्ञानस्वरूप ब्रह्मके साथ सम्पूर्ण दिव्य अलौकिक भोगरूप परम आनन्दको प्राप्त होकर अमर हो गया अर्थात् सदाके लिये जन्म-मृत्युसे छूट गया। '**समभवत्**' (हो गया)—इस वाक्यकी पुनरुक्ति उपनिषद्की समाप्ति सूचित करनेके लिये की गयी है॥ ४॥

॥ तृतीय अध्याय समाप्त॥ ३॥

॥ ऋग्वेदीय ऐतरेयोपनिषद् समाप्त॥

शान्तिपाठ

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः। अनेनाधीतेनाहोरात्रान्सन्दधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

[इसका अर्थ उपनिषद्के प्रारम्भमें दिया जा चुका है।]

उपनिषत्सार

(श्रीभवदेवजी झा)

यही सब उपनिषदोंका सार।
सार-रूप केवल ईश्वर है, यह संसार असार॥ १॥
क्षणभङ्गुर दुर्लभ मानव-तन, विषय सभी निस्सार।
बरबस इस मनको वशमें कर, करो आत्म-उद्धार॥ २॥
भू-मण्डलके कण-कणमें है, विभुका ही विस्तार।
सबमें जीव समान जानकर, करो तुल्य-व्यवहार॥ ३॥
अनासक्त होकर करना है, निज आहार-विहार।
अहंकार-परिहार न जबतक, नहीं कर्म-निस्तार॥ ४॥
सत्य-शोध ही भव-रोगोंका, एक मात्र उपचार।
आत्म-बोध ही पहुँचाता है, जगन्मुक्तिके द्वार॥ ५॥
देही अजर-अमर-अक्षर है, देह विकारागार।
यही देह-देही-विवेक ही, देता पार उतार॥ ६॥
है स्वरूप-विस्मृति ही माया, और ब्रह्म ओंकार।
निर्गुण-सगुण एक ईश्वर है, निराकार-साकार॥ ७॥
'मैं' हूँ निर्व्यापार न मेरा, नाम-रूप-आकार।
'मैं' भी वही ब्रह्म हूँ, सत्-चित्-सुखका पारावार॥ ८॥